* ओ३म् *

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः प्रथमो भागः

वर्णोच्चारणशिक्षा

*

पाणिनिमुनिप्रणीता

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहिता

पठनपाठनव्यवस्थायां प्रथमं पुस्तकम्

अजमेरनगरे वैदिक-यन्त्रालये मुद्रिता

*

सृष्ट्यब्दाः १,९६,०८,५३,०८३
विक्रमीय संवत् २०३९

चौदहवीं बार
५०००

मूल्य
१ रुपया

※ ओ३म् ※

भूमिका

—※—

मुझ को इस पुस्तक का प्रकाश करना आवश्यक विदित इसलिये हुआ है कि आजकल देवनागरी वर्णों के उच्चारण में बहुधा जो जो गड़बड़ हुई है उस उस को छोड़ कर यथायोग्य वर्णों का उच्चारण मनुष्य करें। जैसे ज्ञा, इसमें ज+ञ्+आ, ये तीन अक्षर मिले हैं, इन का उच्चारण भी जकार ञकार और आकार ही का होना चाहिये, किन्तु ऐसा न हो कि जैसे दाक्षिणात्य लोग अर्थात् द्राविड़, तैलङ्ग, कारणाटक और महाराष्ट्र द्नान, गुजराती लोग ग्याँन और पञ्चगौड़ ग्यान ऐसा अशुद्ध उचारण अन्ध परम्परा से वेदादिशास्त्रों के पाठ में भी करते हैं। ऐसे ही पञ्चगौड़ प्रायः ष के स्थान में स का और कोई कोई ख का और य के स्थान में जा उच्चारण करते हैं। वैसे ही बङ्गाली लोग ष और स के स्थान में भी श का उच्चारण किया करते हैं। यह अन्ध-परम्परा नष्ट होकर शुद्धोच्चारण की परम्परा होनी योग्य है।

और जैसे पाणिनिकृत शिक्षा में तिरसठ अक्षर वर्णमाला में माने हैं, उन की गणना पूरी करने के लिये कई एक लोगों ने 'कुँ, खुँ, गुँ, घुँ' इन चार को यम मान के तिरसठ अक्षर पूरे किये हैं। भला यहां विचारना चाहिये कि जब पूर्वोक्त यम हैं तो 'चुँ, छुँ, जुँ, झुँ, टुँ, ठुँ' इत्यादि यम क्यों न हों। और जो कोई कहे कि 'पलिक्क्नी, चख्ख्नतुः, जग्ग्मिः, जघ्घ्नुः' इत्यादि में 'क्, ख्, ग्, घ्' ये वर्ण यम कहाते

और प्रातिशाख्य में भी प्रसिद्ध हैं, तो क्या इस बात को वे नहीं जानते कि वे वर्णान्तर कभी नहीं हो सकते, क्योंकि वे तो कवर्ग में पढ़े ही हैं।

तथा अपाणिनीय शिक्षा को पाणिनिकृत मान के पाठ किया करते और उस को वेदाङ्ग में गिनते हैं, क्या वे इतना भी नहीं जानते कि 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा'। अर्थ—मैं जैसा पाणिनि मुनि की शिक्षा का मत है वैसी शिक्षा करूंगा। इस में स्पष्ट विदित होता है कि यह ग्रन्थ पाणिनि मुनि का बनाया नहीं किन्तु किसी दूसरे ने बनाया है। ऐसे ऐसे भ्रमों की निवृत्ति के लिये बड़े परिश्रम से पाणिनिमुनिकृत शिक्षा का पुस्तक प्राप्त कर उन सूत्रों की सुगम भाषा में व्याख्या करके वर्णोच्चारणविद्या की शुद्ध प्रसिद्धि करता हूँ, कि मनुष्यों को थोड़े ही परिश्रम से वर्णोच्चारणविद्या की प्राप्ति शीघ्र हो जावे।

इस ग्रन्थ में जो जो बड़े अक्षरों में पाठ है, वह वह पाणिनिमुनि-कृत, और मध्यम अक्षरों में अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पाठ और जो जो छोटे अक्षरों में छपा है वह मेरा बनाया है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये॥

इति भूमिका समाप्ता॥

ह० दयानन्द सरस्वती काशी

※ ओ३म् ब्रह्मात्मने नमः ※

अथ वर्णोच्चारणशिक्षा

(प्रश्न) वर्ण वा अक्षर किनको कहते हैं ?

१—(उत्तर) **अक्षरं नक्षरं विद्यादश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम् ।**
वर्णं वाहुः पूर्वसूत्रे किमर्थमुपदिश्यते ॥

महाभाष्य अ० १ । पा० १ । आ० २ ॥

मनुष्य (अक्षरं नरक्षम्) जो सर्वत्र व्याप्त जिन का कभी विनाश नहीं होता, (वर्णं वाहुः पूर्वसूत्रे) अथवा जिनको पूर्वसूत्र[1] में वर्ण और अक्षर कहते हैं, (विद्यात्) उनको प्रयत्न से जानें ।

(प्रश्न) किसलिये इनका उपदेश किया जाता है ?

२—(उत्तर) **वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्त्तते ।**
तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते ॥

सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः सर्ववेदपुण्यफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति ॥

महाभाष्य अ० १ । पा० १ । आ० २ ॥

मनुष्य (यत्र) जिसमें (ब्रह्म च) शब्द ब्रह्म वेद और परब्रह्म को प्राप्त हों, (वाग्विषयः) और वे जो वाणी का विषय अर्थात्

१. अष्टाध्यायी के अइउण् आदि सूत्रों के व्याख्यान में यह कारिका है, व्याकरण की अपेक्षा में शिक्षा पूर्वसूत्र और उस में भी 'तमक्षरं०' इस की अपेक्षा में पूर्व 'आकाशवायु०' इस सूत्र में वर्ण का व्याख्यान ॥

(वर्णज्ञानम्) वर्णों का यथार्थ विज्ञान है उसको जान सकें, (तदर्थम्) इस इष्ट बुद्धि अर्थात् वर्णों का यथार्थ अभीष्ट ज्ञान और स्वल्प प्रयत्न से महालाभ को प्राप्त होने के लिए अक्षरों का अभ्यास उच्चारण की रीति प्रसिद्ध की जाती है।

सो यह अक्षरों का अच्छे प्रकार कथन वाक्समाम्नाय है, अर्थात् अपने शब्दरूपी पुष्प फलों से युक्त चन्द्र और ताराओं के समान सुशोभित आकाश में स्थित राशि: = शब्दों का समुदाय ब्रह्मराशि जानने योग्य है, और इसके यथार्थज्ञान में सम्पूर्ण वेदों का फल प्राप्त होता है। इसमें वर्णों के ठीक ठीक उच्चारण से सुनने में प्रीति और श्रम की निवृत्ति होती है, इसलिए यह वर्णोच्चारण विद्या अवश्य जाननी चाहिये।

(प्रश्न) वर्णों का रूप कैसे प्रकट होता है ?

३—**(उत्तर)**

आकाशवायुप्रभवः शरीरात्समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः ।
स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः सशब्दः ।। १ ।।

आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न होनेवाला, नाभि के नीचे से ऊपर उठता हुआ जो मुख को प्राप्त होता है, उसको 'नाद' कहते हैं। वह कण्ठ आदि स्थानों में विभाग को प्राप्त हुआ वर्णभाव को प्राप्त होता है, उसको 'शब्द' कहते हैं।

४—**आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया ।**
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।
मारुतस्तूरसि चरन्मन्दं जनयति स्वरम् ।।

जीवात्मा बुद्धि से अर्थों की संगति करके कहने की इच्छा से मन को युक्त करता, विद्युत्‌रूप मन जठराग्नि को ताड़ता, वह वायु को

प्रेरणा करता और वायु उरःस्थल में विचरता हुआ मन्द स्वर को उत्पन्न करता है।

(प्रश्न) शब्द का स्वरूप कैसा है, किस फल को प्राप्त करता और किन पुरुषों से सेवित है ?

५—(उत्तर)—

तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः।
स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति ॥ २ ॥

(विप्रः) विद्वान् लोग (तत्) उस आकाशवायु प्रतिपादित (अक्षरम्) नाशरहित (गुहाशयम्) विद्यासुशिक्षासहित बुद्धि में स्थित (परम्) अत्युत्तम (पवित्रम्) शुद्ध (ब्रह्म) शब्दराशि की (सम्यक्) अच्छे प्रकार (उशन्ति) प्राप्ति की कामना करते हैं, और (स एव) वही (सम्यक् प्रयुक्तः) अच्छे प्रकार प्रयोग किया हुआ शब्द (अभ्युदयेन) शब्द आत्मा मन (च) और स्वसम्बन्धियों के लिये इस संसार के सब सुख तथा (श्रेयसा) विद्यादि शुभ गुणों के योग (च) और मुक्तिसुख से (पुरुषम्) मनुष्य को (युनक्ति) युक्त कर देता है। इसलिये इस वर्णोच्चारण की श्रेष्ठ शिक्षा से शब्द के विज्ञान में सब लोग प्रयत्न करें।

शब्द का लक्षण

६—श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ॥ महाभाष्य अ० १। पा० १। सू० २। आ० २॥

यह 'अइउण्' सूत्र की व्याख्या में लिखा है कि (श्रोत्रोपलब्धिः) जिसका कान इन्द्रिय से ज्ञान (बुद्धिनिर्ग्राह्यः) और बुद्धि से निरन्तर ग्रहण (प्रयोगेणाभिज्वलितः) जो उच्चारण से प्रकाशित होता

तथा (आकाशदेशः) जिसके निवास का स्थान आकाश है (शब्दः) वह 'शब्द' कहाता हैं ?

(प्रश्न) वर्णमाला में कितने वर्ण हैं ?

७—(उत्तर) [वर्णास्] त्रिषष्टिः ॥३॥

तिरसठ हैं । और वे अकारादि वर्णों में विभक्त हैं । जैसे—

अकारादि स्वरों का स्वरूप

ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत
अ	आ	अ ३
इ	ई	इ ३
उ	ऊ	उ ३
ऋ	ॠ	ऋ ३
ऌ	०	ऌ ३
०	ए	ए ३
०	ऐ	ऐ ३
०	ओ	ओ ३
०	औ	औ ३

कवर्ग—क ख ग घ ङ ।
चवर्ग—च छ ज झ ञ ।
टवर्ग—ट ठ ड ढ ण ।
तवर्ग—त थ द ध न ।
पवर्ग—प फ ब भ म ।
अन्तस्थ—य र ल व ।
ऊष्म—श ष स ह ।

अयोगवाहरूप

: विसर्जनीय	ᳲ ह्रस्व
ᳵ जिह्वामूलीय	ᳳ दीर्घ
ᳶ उपध्मानीय	ँ अनुनासिक चिह्न
ं अनुस्वार	ळ और यह अक्षर
	इनको चार यम भी कहते हैं

उक्त वर्णों में अवर्ग के वर्ण अकार आदि 'स्वर' और कवर्ग आदि वर्गों के वर्ण 'व्यञ्जन' कहाते हैं । स्वर वर्ण शब्दों में शुद्ध-स्वरूप से भी रहते और व्यञ्जनों के साथ में मात्रारूप से भी आते हैं । मात्रारूप स्वरों में जब व्यञ्जन मिलाये जाते हैं तब प्रत्येक

व्यञ्जन बारह प्रकार से कहा जाता है, उसका स्वरूप और संयोग-चक्र (जिससे कि व्यञ्जन का परस्पर सम्बन्ध विदित होता है) आगे लिखते हैं—

बारह अक्षरों का स्वरूप

क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
ा	ा ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ	ं	ः
क	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	कं	कः

संयोगचक्रम्

क् य् अ-क्य	ज् ञ् अ-ज्ञ	क् ऋ-कृ	क् व् अ-क्व
क् च् अ-क्च	ह् य् अ-ह्य	क् ॠ-कॄ	क् ष् अ-क्ष
क् र् अ-क्र	ह् व् अ-ह्व	क् लृ-क्लृ	श् य् अ-श्य

जैसे यह ककार का स्वरों के साथ मेल करके स्वरूप दिखलाया गया है, वैसे ही खकारादि वर्णों का स्वरों के साथ मेल और स्वरूप का विज्ञान बुद्धि से पढ़ने पढ़ाने वालों को लिख लिखा कर ठीक ठीक करना चाहिये ।

स्वरों का लक्षण

८—स्वयं राजन्त इति स्वराः ।।

महा० अ० १ । पा० २ । सू० २९ । आ० १ ॥

जिन के उच्चारण में दूसरे वर्णों के सहाय की अपेक्षा न हो, वे 'स्वर' कहाते हैं ।

स्वरों की संज्ञा

९—ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ।। अ० १ । पा० २ । सू० २७ ।।

स्वरों की ह्रस्व दीर्घ और प्लुत भेद से तीन संज्ञा हैं । इनके उच्चारण समय का लक्षण यह है कि जितने समय में अङ्गुष्ठ के मूल की नाड़ी की गति एक बार होती है उतने समय में ह्रस्व, उससे दूने काल में दीर्घ, और उसके तिगुने काल में प्लुत का उच्चारण करना चाहिये । और स्वरों के उदात्तादि भी गुण हैं ।

१०—उच्चैरुदात्तः ।। अ० १ । २ । २९ ।।

ऊर्ध्वध्वनि से 'उदात्त' । और—

११—नीचैरनुदात्तः ।। अ० १ । २ । ३० ।।

नीचे स्वर से 'अनुदात्त' बोला जाता है ।

१२—समाहारः स्वरितः ।। अ० १ । २ । ३१ ।।

उदात्त और अनुदात्त स्वरों को मिलाकर बोलना 'स्वरित' कहाता है ।

१३—ह्रस्वं लघु ।। अ० १ । ४ । १० ।।

ह्रस्व स्वर की 'लघु' संज्ञा । और—

१४—संयोगे गुरु ।। अ० १ । ४ । ११ ।।

जो दो वा अधिक व्यञ्जनों का संयोग परे हो तो पूर्व ह्रस्व अच् की 'गुरु' संज्ञा होती है । जैसे 'विप्रः' यहां वकार में इकार की गुरु संज्ञा है क्योंकि इसके परे पकार और रेफ का संयोग है ।

१५—दीर्घं च ।। अ० १ । ४ । १२ ।।

और दीर्घ की भी 'गुरु' संज्ञा है ।

१६—हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ अ० १ । १ । १७ ॥

अनन्तर अर्थात् अचों का जो व्यवधान उससे रहित हलों की 'संयोग' संज्ञा है ।

व्यञ्जन का लक्षण

१७—अन्वग्भवति व्यञ्जनमिति ॥

म० अ० १ । पा० २ । सू० २९ । आ० १ ॥

जिन का उच्चारण विना स्वर के नहीं हो सकता वे 'व्यञ्जन' कहाते हैं ।

उच्चारण करने वालों के गुण

१८—माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥

(माधुर्यम्) वर्णों के उच्चारण में मधुरता (अक्षरव्यक्तिः) भिन्न भिन्न अक्षर (पदच्छेदः) पृथक् पृथक् पद (तु) और (सुस्वरः) सुन्दरध्वनि (धैर्यम्) धीरता (च) और (लयसमर्थम्) विराम यथा सार्थकता और जैसा ह्रस्व दीर्घ प्लुत, उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वर, स्पर्श आदि आभ्यन्तर और विवारादि बाह्य प्रयत्न से अपने अपने स्थानों में वर्णों का उच्चारण करना तथा सत्यभाषणादि भी वर्णों के उच्चारण करनेवालों के गुण हैं ।

स्वरों के उच्चारण में दोष

१९—ग्रस्तं निरस्तमविलम्बितं निर्हतमम्बूकृतं ध्मातमथो विकम्पितम् ।
सन्दष्टमेणीकृतमर्द्धकं द्रुतं विकीर्णमेताः स्वरदोषभावनाः ॥

महाभाष्य अ० १ । पा० १ । आ० १ ॥

(ग्रस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख से पकड़ कर बोलना (निरस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख से ग्रहण करके फेंक देना (अविलम्बिम्) जिस का उच्चारण पृथक् पृथक् करना चाहिये उसको वर्णान्तर में मिलाके बोलना (निर्हतम्) जैसे किसी को धक्का देना (अम्बूकृतम्) जैसे मुख में जल भर के बोलना (ध्मातम्) जैसे रुई को धुनना वा लोहार की भाठी के समान उच्चारण करना (विकम्पितम्) जैसे कम्प करके बोलना (सन्दष्टम्) जैसे किसी वस्तु को दांतों से काटते हुए बोलना (एणीकृतम्) जैसे हरिण कूद के चलते हैं वैसे ऊपर नीचे ध्वनि से बोलना (अर्द्धकम्) जितने समय में जिस वर्ण का उच्चारण करना चाहिये उसके आधे समय में बोलना (द्रुतम्) त्वरा से बोलना (विकीर्णम्) जैसे कोई वस्तु बिखर जाय वैसा उच्चारण करना, ये सब दोष स्वरों के उच्चारण करनेहारों के हैं ।

**२०—अतोऽन्ये व्यञ्जनदोषाः । शशः षष इति मा भूत् ।
पलाशः पलाष इति मा भूत् । मञ्चको मञ्जक इति मा भूत् ।।**

महाभाष्य अ० १ । पा० १ । आ० १ ।।

व्यञ्जनों के उच्चारण में भी दोषों को छोड़ कर बोलना चाहिये । जैसे (शशः) इन तालव्य शकारों के उच्चारण में (षष इति मम भूत्) मूर्द्धन्य षकारों का उच्चारण करना (पलाशः पलाषः) यहां भी पूर्ववत् जानना (मञ्चकः) कोई इस च के स्थान में (मञ्जकः) ज का उच्चारण करे, इत्यादि व्यञ्जनों के उच्चारण करनेहारों के दोष कहाते हैं । इसलिये जिस जिस अक्षर का जो जो स्थान प्रयत्न और उच्चारण का क्रम है वैसा ही उस उस का उच्चारण करना योग्य है ।

(प्रश्न) इस ग्रन्थ में कितने प्रकरण हैं ?

२१—(उत्तर) स्थानमिदं करणमिदं प्रयत्न एषो द्विधाऽनिलः स्थानम् । पीडयति वृत्तिकारः प्रक्रम एषोऽथ नाभितलात् ।।४।।

स्थान, करण, आभ्यन्तर प्रयत्न, बाह्य प्रयत्न, स्थान में वायु का ताड़न, वृत्तिकार, प्रक्रम और नाभि के अधोभाग से वायु का उत्थान, आठ ये (८) प्रकरण क्रम से इस ग्रन्थ में हैं ।।

अथ प्रथमं प्रकरणम्

२२—अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः ।। ५ ।।

अ, आ, अ३, कु अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, ह और : विसर्जनीय इन वर्णों का कण्ठ स्थान है । अर्थात् जो जिह्वा का मूल कण्ठ का अग्रभाग काकल्क के नीचे देश है उस कण्ठ स्थान से इनका शुद्ध उच्चारण होता है ।

२३—हविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम् ।। ६ ।।

कई एक आचार्य्यों का ऐसा मत है कि हकार और : विसर्जनीय का उच्चारण उरःस्थान अर्थात् कण्ठ के नीचे और स्तनों के ऊपर स्थान से करना चाहिये ।

२४—जिह्वामूलीयो जिह्व्यः ।।७।।

और वे ऐसा भी मानते हैं कि जिसलिये जीभ के मूल से इस जिह्वामूलीय का उच्चारण होता है इसलिये यह जिह्वामूलीय कहाता है ।

२५—कवर्गं ऋवर्णश्च जिह्व्यः ॥ ८ ॥

तथा उन का यह भी मत है कि जिस कारण कवर्ग और ऋवर्ण अर्थात् ह्रस्व दीर्घ और प्लुत का जिह्वामूल भी स्थान है, इससे इनको जिह्वा की जड़ में से भी बोलना अशुद्ध नहीं।

२६—सर्वमुखस्थानमवर्णमित्येके ॥ ९ ॥

जिसलिये अवर्ण का उच्चारण सब मुख में करना शुद्ध है, इसलिये कोई आचार्य अवर्ण को सर्वमुखस्थान वाला कहते हैं।

२७—कण्ठ्यानास्यमात्रानित्येके ॥ १० ॥

तथा कई एक आचार्यों का मत ऐसा भी है कि जिन जिन वर्णों का कण्ठ स्थान है, उन सब का उच्चारण मुखमात्र में होना भी अशुद्ध नहीं।

२८—इचुयशास्तालव्याः ॥ ११ ॥

जो इ, ई, इ३, चु अर्थात् च, छ, ज, झ, ञ, य और श हैं, इनका तालुस्थान अर्थात् दांतों के ऊपर से उच्चारण करना चाहिये। जैसे च के उच्चारण में जिस स्थान में जैसी जीभ की क्रिया करनी पड़ती है वैसे शकार का उच्चारण करना योग्य है।

२९—ऋटुरषा मूर्द्धन्याः ॥ १२ ॥

ऋ, ॠ, ऋ३, टु अर्थात् ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष का उच्चारण मूर्द्धास्थान अर्थात् तालु के ऊपर से करना चाहिये। जैसी क्रिया ट के उच्चारण में की जाती है वैसी ही ष के उच्चारण में करनी उचित है।

३०—रेफो दन्तमूलीय एकेषाम् ॥ १३ ॥

कई एक आचार्यों का ऐसा मत है कि र का उच्चारण दांत के मूल से भी करना योग्य है।

३१—दन्तमूलस्तु तवर्गः ॥ १४ ॥

वैसे ही कई एक आचार्यों के मत में तवर्ग अर्थात् त, थ, द, ध और न का उच्चारण दन्तमूल स्थान से भी करना अच्छा है।

३२—लृतुलसा दन्त्याः ॥ १५ ॥

लृ, लृ ३, तु अर्थात् त, थ, द, ध, न, ल और स इन वर्णों का दन्तस्थान अर्थात् दांतों में जिह्वा लगा के उच्चारण करना, है।

३३—वकारो दन्त्यौष्ठ्यः ॥ १६ ॥

व का उच्चारण दांत और ओष्ठ से होना चाहिये।

३४—सृक्किणीस्थानमेके ॥ १७ ॥

कई एक आचार्यों के मत में वकार को सृक्किणीस्थान से बोलना चाहिये। जो दाँत और ओष्ठ के बीच में स्थान है उसे 'सृक्किणी' कहते हैं।

३५—उपूपध्मानीया ओष्ठ्याः ॥ १८ ॥

उ, ऊ, उ३, पू अर्थात् प, फ, ब, भ, म और ᳲ इस उपध्मानीय का ओष्ठस्थान से उच्चारण करना शुद्ध है।

३६—अनुस्वारयमा नासिक्याः ॥ १९ ॥

ल को छोड़ के ँ और . अनुस्वार को नासिका से बोलना शुद्ध है।

३७—कण्ठ्यनासिक्यमनुस्वारमेके ॥ २० ॥

कंठ और नासिका स्थानवाले ङकार को कोई आचार्य्य अनुस्वार के समान केवल नासिकास्थानी कहते हैं।

३८—यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीया एकेषाम् ॥ २१ ॥

कई एक आचार्य्यों के मत से यम वर्ण अर्थात् ꣳ ᳲ ँ ये भी नासिका और जिह्वामूल स्थानवाले हैं।

३९—एदैतौ कण्ठ्यतालव्यौ ।। २२ ।।

ए ऐ कंठ और तालु से बोलने योग्य हैं ।

४०—ओदौतौ कण्ठ्यौष्ठ्यौ ।। २३ ।।

ओ औ को कंठ और ओष्ठ से बोलना शुद्ध है ।

४१—ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः ।। २४ ।।

ङकारादि पांच वर्णों को स्व स्व स्थान और नासिकास्थान से बोलना चाहिये ।

४२—द्वे द्वे वर्णे सन्ध्यक्षराणामारम्भके भवत इति ।। २५ ।।

सन्ध्यक्षर अर्थात् जो ए, ऐ, ओ, औ हैं, इन में दो दो वर्ण मिले होते हैं । जैसे अ, आ, से इ, ई मिल के ए । अ, आ, से ए, ऐ मिल के ऐ । अ, आ से उ, ऊ मिल के ओ । अ, आ से ओ, औ मिल के औ हो जाते हैं । जैसे एकार के आदि में अकार का कंठ और अन्त में इकार का तालुस्थान है, इसी प्रकार ओकार में प्रथम कण्ठ और दूसरा ओष्ठ स्थान है ।

४३—सरेफ ऋवर्णः ।। २६ ।।

जो रेफ के सहित ऋवर्ण हैं, उसको मूर्द्धास्थान में बोलना चाहिये ।।

इति प्रथमं प्रकरणम् ।।

अथ द्वितीयं प्रकरणम्

अब स्थानों के कहने के पश्चात् दूसरे प्रकरण का आरम्भ करते हैं । इस में जैसी जैसी क्रिया से जिस जिस वर्ण का उच्चारण करना

होता है, उस उस का वर्णन है। परन्तु यहां इतना अवश्य समझना है कि सब वर्णों के उच्चारण में जिह्वा मुख्य साधन है, क्योंकि उसके विना किसी वर्ण का उच्चारण कभी नहीं हो सकता।

४४—जिह्व्यतालव्यमूर्द्धन्यदन्त्यानां जिह्वा करणम् ॥ १ ॥

जिनका जिह्वामूल, तालु, मूर्द्धा और दन्तस्थान है, उनके उच्चारण में जिह्वा मुख्य साधन है। क्योंकि जिस जिस वर्ण का जो जो स्थान कहा है उस उस में जिह्वा लगाने ही से उनका ज्यों का त्यों उच्चारण होता है। यह सामान्य सूत्र है, इसका विशेष विधान आगे कहते हैं।

४५—जिह्वामूलेन जिह्व्यानां तद्ध्येषामभ्यासम् ॥ २ ॥

जिन वर्णों का जिह्वामूल अभ्यास अर्थात् उच्चारण स्थान है, उन जिह्वामूलीय वर्णों का जिह्वामूल से स्पर्श करके उच्चारण करना चाहिये ※।

४६—जिह्वोपाग्रेण मूर्द्धन्यानाम् ॥ ३ ॥

जिन वर्णों का मूर्द्धास्थान कहा है, उनका उच्चारण जिह्वा के ऊपर ले अग्रभाग से मूर्द्धा को स्पर्श करके करना चाहिये।

४७—जिह्वाग्राधः करणं वा ॥ ४ ॥

इनके उच्चारण में दूसरा पक्ष यह भी है कि जिह्वाग्र के अधोभाग से मूर्द्धा को स्पर्श करके उच्चारण करना योग्य है।

४८—जिह्वाग्रेण दन्त्यानाम् ॥ ५ ॥

जिन वर्णों का दन्तस्थान कहा है, उनका उच्चारण जिह्वा के अग्रभाग से दांतों को स्पर्श करके ही करना चाहिये।

※ इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि जिह्वामूलीय वर्णों का जिह्वामूल उच्चारण साधक उनके लिये है जिन को उस प्रकार बोलने का अभ्यास होवे ॥

४६—इत्येतदन्तः करणम् ॥ ६ ॥

इस प्रकार से मुख के भीतर स्थानों में वर्णों की उच्चारण क्रिया जाननी चाहिये ।

इति द्वितीयं प्रकरणम् ॥

अथ तृतीयं प्रकरणम्

अब स्थान और करण के कहने पश्चात् तीसरे प्रकरण का आरम्भ किया जाता है । इसमें आभ्यन्तर प्रयत्नों का वर्णन किया है ।

५०—प्रयत्नोऽपि द्विविधः ॥ १ ॥

प्रयत्न भी दो प्रकार के होते हैं ।

५१—आभ्यन्तरो बाह्यश्च ॥ २ ॥

आभ्यन्तर और बाह्य ।

५२—आभ्यन्तरस्तावत् ॥ ३ ॥

इन दोनों में से प्रथम आभ्यन्तर प्रयत्नों को कहते हैं ।

५३—स्पृष्टकरणाः स्पर्शाः ॥ ४ ॥

ककार से लेके मकार पर्य्यन्त २५ पच्चीस वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न है, अर्थात् जिह्वा से स्व स्व स्थानों में स्पर्श करके इन वर्णों का उच्चारण करना शुद्ध है ।

५४—ईषत्स्पृष्टकरणाः अन्तस्थाः ॥ ५ ॥

थोड़े स्पर्श करके अन्तस्थ अर्थात् य, र, ल, व का उच्चारण करना चाहिये ।

५५—ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः ॥ ६ ॥

जिसलिये ऊष्म अर्थात् श, ष, स, ह का अपने अपने स्थान में जिह्वा का किञ्चित् स्पर्श करके शुद्ध उच्चारण होता है, इसलिये इसका ईषद्विवृत प्रयत्न है ।

५६—विवृतकरणा वा ॥ ७ ॥

और इसमें दूसरा पक्ष यह भी है कि स्व स्व स्थान को जीभ से स्पर्श के विना भी इनका उच्चारण करना शुद्ध है । इसलिये श, ष, स, ह का विवृत प्रयत्न भी है ।

५७—विवृतकरणाः स्वराः ॥ ८ ॥

जिसलिये उक्त स्थानों से जीभ को अलग रख के स्वरों का उच्चारण करना योग्य है, इसलिये इनका विवृत प्रयत्न है ।

५८—संवृतस्त्वकारः ॥ ९ ॥

अकार का संवृत प्रयत्न है । क्योंकि इसका उच्चारण कण्ठ को संकोच करके होता है, परन्तु इस का कार्य करने के समय विवृत प्रयत्न ही होता है ।

५९—इत्येषोऽन्तः प्रयत्नः ॥ १० ॥

यह आभ्यन्तर प्रयत्नों का प्रकरण पूरा हुआ ।

इति तृतीयं प्रकरणम् ॥

अथ चतुर्थं प्रकरणम्

६०—अथ बाह्याः प्रयत्नाः ॥ १ ॥

अब इसके आगे चौथे प्रकरण में वर्णों के बाह्य प्रयत्नों का वर्णन करते हैं ।

६१—वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसविसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीया यमौ च प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः श्वासाऽनुप्रदानाश्चाऽघोषाः ॥ २ ॥

यहां वर्ग शब्द से कु, चु, टु, तु, पु इन पांचों का ग्रहण है । इनके दो दो वर्ण अर्थात् कवर्ग में क, ख, चवर्ग में च, छ, टवर्ग में ट, ठ, तवर्ग में त, थ, पवर्ग में प, फ, ऊष्मों में श, ष, स और : विसर्जनीय, ᳵ जिह्वामूलीय, ᳶ उपध्मानीय, ꣳ, ꣴ ये दो यम, इन अठारह (१८) वर्णों का विवृत कण्ठ अर्थात् कण्ठ को फैला श्वासानुप्रदान उच्चारण के पश्चात् श्वास को युक्त कर और अघोष सूक्ष्म ध्वनि की योजनारूप क्रिया करके इनका उच्चारण करना चाहिये ।

६२—एके अल्पप्राणा इतरे महाप्राणाः ॥ ३ ॥

पांचों वर्गों के प्रथम तृतीय और पंचम अर्थात् क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व, यम प्रथम तृतीय अर्थात् ꣳ ꣴ इतने सब अल्पप्राण अर्थात् ये थोड़े और ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, ह, :, ᳵ, ं, ꣳ, ळ और अकारादि स्वर ये सब महाप्राण अर्थात् अधिक बल से बोले जाते हैं ।

६३—वर्गाणां तृतीयचतुर्था अन्तस्था हकारानुस्वारौ यमौ च तृतीयचतुर्थौ नासिक्याश्च संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तश्च ॥ ४ ॥

पांचों वर्गों के तीसरे और चौथे वर्ण अर्थात् ग, घ, ज, झ, ड, ढ, द, ध, ब, भ, अन्तस्थ अर्थात् य, र, ल, व, ह, अनुस्वर और तीसरे **चौथे यम अर्थात्** ळ तथा सानुनासिक अकारादि स्वर इनका संवृत-कण्ठ प्रयत्न अर्थात् कण्ठ का संकोच (नादानुप्रदानाः) इनके उच्चारण में अव्यक्त ध्वनि और (घोषवन्तः) इनका उच्चारण गम्भीर शब्द से करना चाहिये ।

६४—यथा तृतीयास्तथा पञ्चमाः ॥ ५ ॥

वर्गों के तृतीय वर्णों के समान पञ्चम वर्ण अर्थात् ङ, ञ, ण, न, म के संवतकण्ठ, नादानुप्रदान और घोष प्रयत्न समझने चाहियें ।

६५—आनुनासिक्यमेषामधिको गुणः ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त ङ, ञ, ण, न, म को मुख से बोले पश्चात् नासिका से बोलना ही इन का आनुनासिक गुण अधिक है ।

६६—शादय ऊष्माणः ॥ ७ ॥

शादि अर्थात् श, ष, स, ह की उष्मसंज्ञा और ये महाप्राण प्रयत्न से बोले जाते हैं ।

६७—[स] स्थानेन द्वितीयाः ॥ ८ ॥

जो पांच वर्गों के दूसरे वर्ण अर्थात् ख, छ, ठ, थ, फ हैं, वे सकार के समान महाप्राण प्रयत्न से बोलने चाहियें ।

६८—हकारेण चतुर्थाः ॥ ९ ॥

वर्गों के चतुर्थ अर्थात् घ, झ, ढ, ध, भ इन पांचों वर्णों का हकार के समान महाप्राण प्रयत्न होता है ।

इति चतुर्थं प्रकरणम् ॥

अथ पञ्चमं प्रकरणम्

६९—तत्र स्पर्शयमवर्णकरो वायुरय:पिण्डवत्स्थानमभिपीडयति। अन्तस्थवर्णकरो वायुदारुपिण्डवद्। ऊष्मस्वरवर्णकरो वायुरूर्णापिण्डवद्। उक्ताः स्थानकरणप्रयत्ना: ॥ १ ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि जो स्पर्श = ककार से लेके मपर्यन्त पच्चीस (२५) वर्ण और चार यम हैं, इन को प्रकट करने वाले वायु को लोहे के गोले के समान स्थान में लगा के अन्तस्थ वर्णों के बोलने में वायु को काष्ठ के गोले के समान स्थान में लगा के और शादि तथा बाईस (२२) स्वरों के उच्चारण में वायु को ऊनके गोले के समान स्थान में लगा के बोला करें। इस प्रकार जो स्थान करण और प्रयत्न कह चुके हैं, उनका ज्ञान अवश्य करें।

इति पञ्चमं प्रकरणम् ॥

अथ षष्ठं प्रकरणम्

७०—अवर्णो ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्य्योपनयेन चानुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मक एवमिवर्णादयः ॥ १ ॥

अब अकारादि वर्णों के भेद दिखाते हैं। अकार के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद हैं। और जब इन एक एक के साथ ह्रस्व उदात्त, ह्रस्व अनुदात्त, ह्रस्व स्वरित और इसी प्रकार दीर्घ और

प्लुत के साथ लगाते हैं तब अकार के नव (९) भेद हो जाते हैं। और जब ये सानुनासिक भेदयुक्त होते हैं तब इन नव नव के अठारह अठारह भेद होते हैं। इसी प्रकार इकार आदि स्वरों में प्रत्येक के अठारह (१८) भेद समझने चाहियें। परन्तु—

७१—लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति ॥ २ ॥

जिसलिये लृकार के दीर्घ भेद नहीं होते।

७२—तं द्वादशभेदमाचक्षते ॥ ३ ॥

इसलिये लृकार को बारह (१२) भेद से युक्त कहते हैं।

७३—यदृच्छाशब्देऽशक्तिजानुकरणे वा यदा दीर्घाः स्युस्तदाऽष्टादशभेदं ब्रुवते क्लृपक इति ॥ ४ ॥

जिन लोगों के मत में यदृच्छा शब्द होते हैं, वे जब उनका अशक्तिज के अनुकरण में प्रयोग करते हैं तब लृकार को दीर्घ मान के उस के भी अठारह (१८) भेद कहते हैं। जैसे 'क्लृपक' के इस प्रयोग में होते हैं।

७४—सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति तान्यपि द्वादशप्रभेदानि ॥ ५ ॥

जिसलिये सन्ध्यक्षर अर्थात् ए, ऐ, ओ औ, औ इनके ह्रस्व नहीं होते, इसलिये इनके भी बारह बारह भेद होत् हैं।

७५—अन्तस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिताः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च ॥ ६ ॥

और र को छोड़ कर अन्तस्थ अर्थात् य, ल, व ये तीन सानुनासिक यँ, लँ, वँ और निरनुनासिक य, ल, व भेद से दो प्रकार के होते हैं।

७६—रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति ॥ ७ ॥

जिसलिये र और ऊष्म अर्थात् श, ष, स, ह का कोई सवर्णी नहीं होता, इसलिये इनके परे किसी वर्ण के स्थान में इनका सवर्णी आदेश नहीं होता।

७७—वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः ॥ ८ ॥

परन्तु कु, चु, टु, तु, पु इन पाँच वर्ग और य, ल, व इन तीनों की परस्पर सवर्ण संज्ञा मानी जाती है। जैसे ककार का सवर्णी खकार समझा जाता है, वैसे सर्वत्र समझना चाहिये।

इति षष्ठं प्रकरणम्

अथ सप्तमं प्रकरणम्

७८—इत्येष क्रमो वर्णानाम् ॥ १ ॥

यह पूर्व अकारादि वर्णों का क्रम कह के—

७९—तत्रैते कौशिकीयाः श्लोकाः ॥ २ ॥

षष्ठ प्रकरण के विषय में कौशिक ऋषि के श्लोक हैं, उनमें से आगे कुछ विशेषविषयक श्लोक लिखते हैं।

८०—सर्वान्तेऽयोगवाहात्वाद्विसर्गादिरिहाऽष्टकः।
अकार उच्चारणार्थो व्यञ्जनेष्वनुबध्यते ॥ ३ ॥

विना संयोग के प्राप्त होने से यहां सब वर्णमाला के अन्त में विसर्ग आदि अष्टक = विसर्जनीय, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार, चार यम, गिना जाता है और अलग इसकी प्राप्ति होती है, इससे विसर्गादि अष्टक अयोगवाह कहाता और वर्णमाला के वर्णों

से अलग गिना जाता है। वर्णमाला के व्यञ्जनों में एक अकार अनुबन्ध किया है, वह उच्चारणमात्र के लिये है कि जिससे व्यञ्जन का स्पष्ट उच्चारण हो।

८१—ꣲकꣲपयोः कपकारौ च तद्वर्गीयाश्रयत्वतः।
पालिक्क्नी चख्खनतुर्जग्गिमर्जघ्घ्नुरित्यत्र यद्वपुः॥
नासिक्येनोक्तं कादीनां त इमेऽयमाः।
तेषामुकारः संस्थानवर्गीयलक्षकः॥ ४॥

ꣲजिह्वामूलीय और उपध्मानीय के साथ में जो ककार और पकार हैं वे तद्वर्गीयाश्रयत्व से हैं अर्थात् उनका कवर्ग और पवर्ग के परे विधान है, इस से उन के साथ में ककार और पकार हैं। पलिक्क्नो आदि प्रयोगों में जो क् ख् ग् घ् इत्याकारक अंश नासिकास्थानोय ङ् ङ् ङ् ङ् वर्णों से अप्रकटित अर्थात् गृहीत नहीं होता है वह अयम अर्थात् यम नहीं और ककारादि वर्णों का जो उकार आता है वह संस्थानवर्गीय वर्ण अर्थात् उन वर्गों के सजातीय वर्णों का लक्षक है। जैसे कु, चु, टु, तु, पु इनमें प्रत्येक वर्ण के उकार के संयोग से वर्गमात्र का बोध होता है।

इति सप्तमं प्रकरणम्॥

अथाष्टमं प्रकरणम्

८२—उक्ताः स्थानकरणप्रयत्नाः॥ १॥

अब सब वर्णों में स्थान, करण और प्रयत्नों को कह चुके। अगले प्रकरण में स्थान आदि के लक्षण कहते हैं।

८३—यत्रस्था वर्णा उपलभ्यन्ते तत्स्थानम् ।। २ ।।

'स्थान' उसको कहते हैं कि जहां से प्रसिद्ध होके वर्ण सुनने में आते हैं ।

८४—येन निर्वर्त्यते तत्करणम् ।। ३ ।।

स्थानों में जीभ और प्राण के जिस संयोग से वर्णों का उच्चारण करना होता है, उसको 'करण' कहते हैं ।

८५—प्रयतनं प्रयत्नः ।। ४ ।।

जो वर्णों के उच्चारण में पुरुषार्थ से यथावत् क्रिया करनी होती है, वह 'प्रयत्न' कहाता है ।

८६—नाभिप्रदेशात्प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमाक्रामन्नुर-आदीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्नेन विचार्यते ।। ५ ।।

जो ऊपर को श्वास निकलता है उसको 'प्राण' कहते हैं । जो आत्म के उच्चारण की इच्छा से विचारपूर्वक नाभि देश से प्रेरणा किया प्राणवायु ऊपर को उठता हुआ कण्ठ आदि स्थानों में से किसी स्थान में उत्तम यत्न के साथ विचारा जाता है, अर्थात् अकारादि वर्णों के पृथक् पृथक् उच्चारण में वायु के संयोग से विचारपूर्वक यथायोग्य क्रिया करना चाहिये ।

सब मनुष्यों को उचित है कि जिस जिस प्रकरण में जिस वर्ण के उच्चारण के लिये जो जो बात लिखी है उसको ठीक ठीक जान-कर विद्यार्थियों को जना के शब्दाक्षरों के प्रयोग ज्यों के त्यों कर

प्रशंसित हो सदा आनन्द से युक्त रह और सब विद्यार्थियों को भी वर्णोच्चारण शुद्ध कराकर आनन्द में रक्खो ।

इत्यष्टमं प्रकरणम् ॥

ऋतुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे माघमासे सिते दिले ।
चतुर्थी शनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्ति समागतः ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्तीप्रणीतव्याख्यासहिता
पाणिनीयशिक्षासूत्रसंग्रहान्विता
वर्णोच्चारणशिक्षा समाप्ता ॥